© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 699-703

रसवदलङ्कार और गुणीभूतव्यङ्ग्य

कु0 संजू
शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

जहाँ रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता अङ्गीभाव से अर्थात् प्राधान्येन प्रतीत होते हैं, वहाँ ये ध्वनि के विषय होते हैं।[1] इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ रसादि व्यङ्ग्य प्रधान नहीं हैं वहाँ यह ध्वनि का विषय नहीं होगा, केवल प्रधान होने की दशा में ही ये ध्वनि कहलाते हैं। और जहाँ ये किसी के अङ्ग बन जाते हैं वहाँ रसवदादि अलङ्कार कहलाते हैं।

रसवदलङ्कारों के विषय में आचार्य आनन्दवर्धन का कथन है कि जहाँ अन्य अर्थात् अङ्गभूत रसादि से भिन्न, रस या वस्तु अथवा अलङ्कार प्रधान वाक्यार्थ हो और उसमें रसादि (रस एवं भाव, तदाभास, भावशान्ति आदि) अङ्ग हों उस काव्य में रसादि अलङ्कार (रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि, समाहित) होते हैं।[2]

ध्वनिवादी लोचनकार का मत है कि रस की अभिव्यक्ति होती है, और उस अभिव्यक्ति का साधन है व्यञ्जना–व्यापार। जिस स्थान पर वह अभिव्यक्ति प्रधान होती है, वहाँ पर उसे 'ध्वनि' कहते हैं। और जब वह अप्रधान होती है, तब उसे ''रसादि अलङ्कार'' कहा जाता है।

ध्वन्यालोक के द्वितीय उद्योत की पाँचवी कारिका की वृत्ति में आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने पक्ष में कहा है कि, यद्यपि रसवदलङ्कार का विषय अन्यों ने प्रदर्शित किया है तथापि जिस काव्य में प्रधानतया कोई अन्य अर्थ (रस या वस्तु, या अलङ्कार) वाक्यार्थ हो, उस प्रधान वाक्यार्थ के अङ्गभूत जो रसादि हों वे रसादि अलङ्कारों के विषय होते हैं–

यद्यपि रसवदलङ्कारस्यान्यैर्दर्शितो विषयस्तथापि यस्मिन् काव्ये प्रधानतयाऽन्योऽर्थो वाक्यार्थीभूतस्तस्य चाङ्गभूता ये रसादयस्ते रसादेरलङ्कारस्य विषया इति मामकीनः पक्षः।

उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार से चाटु अर्थात् चापलूसी के वचनों में प्रेयोऽलङ्कार (आचार्य भामह ने गुरु, देव, नृपति, पुत्रविषयक प्रेमवर्णन को प्रेयोऽलङ्कार कहा है) के मुख्य वाक्यार्थ होने पर भी रसादि अङ्गरूप में दिखलायी देते हैं वहाँ रसादि अलङ्कार होगा।

'तद्यथा चाटुषु' इस अंश की व्यास्या में दो पक्ष दिखलाये गये हैं। आचार्य भामह के अभिप्राय से इन सभी को एक वाक्य माना गया है।

भामह के अनुसार गुरु, देवता, नृपति, पुत्र के सम्बन्ध में प्रीति वर्णन प्रेयोलङ्कार है।

---

[1]. रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रमः।
ध्वनेरात्माऽङ्गिभावेन भासमानी व्यवस्थितः।। – ध्वन्यालोक–2/3

[2]. प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गन्तु रसादयः।
काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरिति मे मतिः।। (ध्वन्या0, द्वि0 उ0–कारिका–5)

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 699-703

अतः इनके अनुसार प्रेयोलङ्कार का विग्रह होगा– 'प्रेयान अलङ्कारो यत्र' अर्थात् जिस स्थान पर अत्यधिक प्रिय प्राणी अलङ्कार या वर्णन का विषय हो, उस स्थान पर वह प्रेयोऽलङ्कार है। अतः यहाँ पर 'प्रेयोऽलङ्कार' वाक्यार्थ होने के कारण अलङ्कार नहीं है, बल्कि स्वयं अलङ्करणीय है। वाक्यार्थ का दूसरा अर्थ प्रधानत्व, अर्थात् चमत्कारकारी होना है।

इसके विपरीत आचार्य उद्भट के मतानुयायियों का कहना है कि पूर्व वाक्य में रसवदलङ्कार के विषय होने की चर्चा है, यहाँ पर उत्तर वाक्य में चाटुओं के वाक्यार्थ होने की स्थिति में प्रेयोऽलङ्कार का भी विषय है, यह बात कही गयी है। यह 'अपि' शब्द के वाक्य में प्रयोग से प्रतीत होता है। अर्थात् केवल रसवदलङ्कार का ही नहीं, अपितु प्रेयोऽलङ्कार का भी विषय है।

आचार्य उद्भट के मत में ''भावालङ्कार'' अर्थात् जिसमें रति आदि भावों का वर्णन हो, वह ही प्रेयोऽलङ्कार है।

आचार्य अनन्दवर्धन ने रसवदलङ्कार के दो भेद माने हैं–

1–शुद्ध रसवदलङ्कार। 2–सङ्कीर्ण रसवदलङ्कार।

शुद्ध रसवदलङ्कार–

जो अङ्गभूत अन्य रस या अलङ्कार से मिश्रित नहीं है, अर्थात् जहाँ पर एक ही रसादि प्रेयोऽलङ्कार अर्थात् गुरु, देव, नृपति, पुत्रविषयक प्रीति का अङ्ग है; वहाँ पर शुद्ध रसवदलङ्कार होता है।

यथा–

किं हास्येन न मे प्रयास्यसि पुनः, प्राप्तश्चिराद्दर्शनं
केयं निष्करुण ! प्रवासरुचिता? केनासि दूरीकृतः।
स्वप्नान्तेष्विति ते वदन् प्रियतमव्यासक्तकण्ठग्रहो
बुद्ध्वा रोदिति रिक्तबाहुवलयस्तारं रिपुस्त्रीजनः।।

प्रस्तुत श्लोक में किसी राजा की स्तुति की गयी है। भाव यह है कि तुमने अपने शत्रुओं का नाश कर डाला। उनकी स्त्रियाँ रात को स्वप्न में अपने पति को देखती हैं और उनके गले में हाथ डालकर कहती हैं कि इस हँसी के करने से क्या लाभ है। बहुत दिन बाद दर्शन हुए हैं। अब मैं जाने नहीं दूँगी। हे निष्ठुर! बताओ, तुम्हारी प्रवास में बाहर रहने की रुचि क्यों हो गयी है? तुमको किसने मुझसे अलग कर दिया है? स्वप्न में पति के कण्ठ का आलिङ्गन कर इस प्रकार कहने वाली तुम्हारी रिपुस्त्रियाँ उठकर प्रियतम के कण्ठग्रहण के लिए अपने फैलाये हुये बाहुवलय को रिक्त देखकर तारस्वर से रोती हैं।

यहाँ पर शुद्ध (रसान्तर अथवा अलङ्कारान्तर से असङ्कीर्ण) करुणरस (राजविषयक प्रीति का) अङ्ग है इसलिए स्पष्ट ही रसवदलङ्कार है।

<u>सङ्कीर्ण रसवदलङ्कार</u> :– सङ्कीर्ण रसादि भी अङ्गरूप होता है।

यथा–

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 699-703

क्षिप्तो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोंऽशुकान्तं
गृहणन् केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः सम्भ्रमेण।
आलिङ्गन्योऽवधूतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः
कामीवार्द्रापराधः स दहतु दुरितं शाम्भवो वः शराग्निः।।

त्रिपुरदाह के समय शम्भु के बाण से समुद्भूत, त्रिपुर की युवतियों द्वारा, आर्द्रापराध (तत्कालकृत पराङ्गनोपभोगादि अपराधयुक्त) कामी के समान, हाथ छूने पर झटक दिया गया, जोर से ताड़ित करने पर भी वस्त्र के छोर को पकड़ता हुआ, केशों को पकड़ते समय हटाया गया, पैरों में पड़ा हुआ भी सम्भ्रम (क्रोध अथवा घबराहट) के कारण न देखा गया और आलिङ्गन (करने का प्रयत्न) करने पर आँसुओं से परिपूर्ण नेत्रकमलवाली (कामीपक्ष में ईर्ष्या के कारण और अग्निपक्ष में बचाव की आशा से रहित होने के कारण रोती हुई) त्रिपुर–सुन्दरियों द्वारा तिरस्कृत (कामीपक्ष में प्रत्यालिङ्गन द्वारा स्वीकृत न करके और अग्निपक्ष में सारे शरीर को झटककर फेंका गया) शम्भु का शराग्नि तुम्हारे दुःखों को दूर करे।

इस (श्लोक) में त्रिपुरारि (शिव) के प्रभावातिशय के (मुख्य) वाक्यार्थ होने पर श्लेषसहित ईर्ष्याविप्रलम्भ (और करुण) उसका अङ्ग है (इसलिए यहाँ सङ्कीर्ण रसादि अङ्ग है।

इस प्रकार के उदाहरण रसवदलङ्कार के उचित विषय होते हैं।

रसवदलङ्कार एवं गुणीभूतव्यङ्ग्य की व्यवस्था :–

रसवदलङ्कारों के निरूपण के साथ ही गुणीभूतव्यङ्ग्य का भी प्रश्न समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। अलङ्कार साक्षात् शब्दार्थ के ही उपकारक होते हैं, किन्तु गुणीभूत रस शब्दार्थ के उपकारक न होकर प्रत्यक्षतः रसान्तर के उपकारक होते हैं। यही कारण है कि उनमें अलङ्कार का सामान्य लक्षण न घटित होने से जो लोग उनको रसवदलङ्कार न कहकर गुणीभूत व्यङ्ग्य कहते हैं; उनके मतानुसार ध्वनि और गुणीभूत व्यङ्ग्य दो ही वस्तु है अर्थात् इससे भिन्न रसवदलङ्कार नामक तीसरी वस्तु नहीं है। किन्तु ध्वनिकार ने रसवदलङ्कार एवं गुणीभूतव्यङ्ग्य दोनों को स्वीकार किया है। इनके मत में रसादि ध्वनि के अपराङ्ग होन में रसवत् तथा प्रेयोऽलङ्कार और वस्तु या अलङ्कार ध्वनि के अपराङ्गादि होने पर गुणीभूत व्यङ्ग्य मानने से ही दोनों का समन्वय हो सकेगा।

इसीलिये माना जाता है कि जहाँ पर रसादि वाक्यार्थ होते हैं, वहाँ पर रसादि अलङ्कार का विषय नहीं बल्कि ध्वनि का प्रभेद है, उसके उपमादि अलङ्कार हैं तथा जहाँ पर प्रधानरूप से अर्थान्तर के वाक्यार्थ हो जाने पर रसादि द्वारा चारुत्व की निष्पत्ति की जाती है, वहाँ रसादि अलङ्कारता का विषय है –

तस्माद्यत्र रसादयो वाक्यार्थीभूताः सः सर्वः न रसादेरलंकारस्य विषयः, सध्वनेः प्रभेदः, तस्योपमादयोऽलंकाराः। यत्र तु प्राधान्येनार्थान्तरस्य वाक्यार्थीभावे रसादिभिश्चारुत्वनिष्पत्तिः क्रियते, स रसादेरलंकारताया विषयः।[34]

————

ध्वनि, उपमादि तथा रसवदलङ्कार–

[3]. ध्वन्यालोक टीकाकार विश्वेश्वर सिद्धा0 पृ0 88, वृत्ति

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 699-703

रसवदलङ्कार के सम्बन्ध में विद्वानों में इस प्रकार का मतभेद भी देखा जाता है कि– चेतन के वाक्यार्थीभूत होने पर रसवदलङ्कार होता है और अचेतन के वाक्यार्थीभूत होने पर उपमादि अलङ्कार होता है। इसका तात्पर्य यह है कि अचेतन के वाक्यार्थीभूत होने पर उसमें चित्तवृत्तिरूप रसादि सम्भव न होने से उसके वर्णन से रसवदलङ्कार की सम्भावना नहीं होगी। अतएव उपमादि अलङ्कार का विषय मानना चाहिए। वहीं चेतन के वाक्यार्थी भाव में रसवदलङ्कार का विषय मानना चाहिए।

आचार्य आनन्दवर्धन इस पक्ष को समर्थन नहीं देते हैं। उन्होंने ध्वनि, उपमादि अलङ्कार और रसवदलङ्कार के सम्बन्ध में स्पष्ट युक्तियाँ दी हैं–

1– जहाँ रसादि की प्रतीति प्रधान रूप से होती है वहाँ रसध्वनि का विषय जानना चाहिए।

2– जहाँ मुख्य रस अलङ्कार्य है और कोई दूसरा रस भी अङ्गभूत नहीं है वहाँ उपमादि अलङ्कार का क्षेत्र है।

3– जहाँ रसादि अङ्गभूत में हैं वहाँ रसवदलङ्कार का विषय है।

इस प्रकार ध्वनि, उपमादि अलङ्कार और रसवदलङ्कारों का क्षेत्र अलग–अलग हो जाता है। इसके विपरीत यदि 'चेतन के वाक्यार्थीभाव में रसवदलङ्कार का विषय' मान लिया जाये तब तो उपमादि अलङ्कारों का विषय बहुत विरल रह जाएगा अथवा सर्वथा ही नहीं रहेगा। क्योंकि जहाँ अचेतन वस्तुवृत्त मुख्य वाक्यार्थ है वहाँ किसी न किसी प्रकार विभावादि द्वारा चेतन वस्तु के वृत्तान्त की योजना निश्चित रूप से रहेगी। इस प्रकार उन सब स्थलों में चेतन वस्तु के वाक्यार्थ बन जाने पर वे सब ही रसवदलङ्कार के विषय हो जायेंगे, उपमादि के नहीं और उपमादि प्रविरल विषय अथवा निर्विषय हो जायेंगे। और चेतना वृत्तान्त योजना होने पर भी जहाँ अचेतन का वाक्यार्थीभाव है। वहाँ रसवदलङ्कार नहीं हो सकता यदि यह कहा जाये, तो बहुत बड़े रसमय काव्यभाग का नीरसत्व कथित हो जायेगा।

इस सन्दर्भ में निम्नलिखित उदाहरणों को देखा जा सकता है–

तरंगभ्रूभङ्गाक्षुभितविहगश्रेणिरशना,
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्।
यथाविद्धं याति स्खलितमभिसन्धाय बहुशो,
नदीरूपेणेयं ध्रुवमसहना सा परिणता।।

अर्थात्–

'टेढ़ी भौंहों के समान तरंगों को और रशना के समान क्षुब्ध विहंग पंक्ति को धारण किये हुये, क्रोधावेश में खिसके हुये वस्त्र के समान फेनों को खीचती हुई यह नदी, बार–बार ढोकर खाकर जो टेढ़ी चाल से जा रही है, ऐसा ज्ञात होता है कि मेरे अनेक अपराधों को देखकर रुठी हुई वह उर्वशी ही नदीरूप में परिणत हो गयी है।

अथवा जैसे–

तन्वी मेघजलार्द्रपल्लवतया धौताधरेवाश्रुभिः,
शून्येवाभरणैः स्वकालविरहाद्विश्रान्तपुस्पोद्गमा।
चिन्तामौनमिवाश्रिता मधुकृतां शब्दैर्विना लक्ष्यते,

© 2018 IJSRSET | Volume 4, Issue 7, March-April-2018
Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099 | Page No : 699-703

चण्डी मामवधूय पादपतितं जातानुतापेव सा।।

अर्थात्–

तन्वी उर्वशी पैरों पर पड़े हुए मुझे तिरस्कृत करके पश्चातापयुक्त होकर आँसुओं से गीले अधर के समान वर्षा के जल से आर्द्रपल्लव को धारण किये, ऋतुकाल न होने से पुष्पोद्गमरहित आभरणशून्य–सी भौरों के शब्द के अभाव में चित्तामौनसी लतारूप में दिखलाई देती है।

अथवा जैसे–

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां,
क्षेमभद्रकलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना,
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः।।

अर्थात्–

'हे भद्र! गोप बन्धुओं के विलाससखा, राधा की एकान्तक्रीड़ाओं के साक्षी, यमुनातट के लताकुंज तो कुशल से हैं? अथवा अब तो मदनशय्या के निर्माण के लिए मृदुकिसलयों के तोड़ने का प्रयोजन न रहने पर नीलकांति को छिटकाते हुये वे पल्लव रूप हो जाते होंगे।

उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में अचेतन क्रमशः प्रथम श्लोक में नदी, दूसरे में लता और तीसरे में लताकुंज वस्तुओं के वाक्यार्थीभाव की प्रधानता होने पर भी विभावादि द्वारा कथचिंत चेतन वस्तु के व्यवहार की योजना है ही। और जहाँ चेतनवस्तुवृत्तान्त की योजना है, वहाँ रसादि अलङ्कार है। ऐसा होने पर उपमादि अलङ्कार सर्वथा निर्विषय हो जायेंगे अथवा यूँ कहिये कि उन उपमादि के उदाहरण बहुत ही कम मिल सकेंगे, क्योंकि ऐसा कोई अचेतन वृत्तान्त नहीं मिलेगा जहाँ चेतन वस्तु वृत्तान्त का सम्बन्ध, अन्ततः विभावरूप से ही सही न हो। इसलिए रसादि के अंग होने पर रसवदलङ्कार होते हैं और जो अंगी रस या भाव सब प्रकार से अलङ्कार्य हैं, वह ध्वनि का आत्मा स्वरूप है।

———————